पाँचवी ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतो अनुप्रेक्षा भाई।।१।।
इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव-सुख ठानै।।२।।
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावे कोई।।४।।
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार-असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा।।५।।
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।
जल-पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।८।।
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।९।।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।

किन हू न कर्‌यो न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।
जे भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।

卐 पाँचवीं ढाल 卐

(चाल छन्द)

भावनाओंके चिंतवनका कारण, उसके अधिकारी और उसका फल

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई॥१॥

अन्वयार्थ :—(भाई) हे भव्य जीव! (सकलव्रती) महाव्रतोंके धारक (मुनि) भावलिंगी मुनिराज (बड़भागी) महान पुरुषार्थी हैं; क्योंकि वे (भव-भोगनतैं) संसार और भोगोंसे (वैरागी) विरक्त होते हैं और (वैराग्य) वीतरागताको (उपावन) उत्पन्न करनेके लिये (माई) माता समान (अनुप्रेक्षा) बारह भावनाओंका (चिन्तैं) चिंतवन करते हैं।

भावार्थ :—पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरुषार्थवान हैं; क्योंकि वे संसार, शरीर और भोगोंसे अत्यन्त विरक्त होते हैं और जिस प्रकार कोई माता पुत्रको जन्म

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

देती है; उसीप्रकार यह बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं; इसलिये मुनिराज इन बारह भावनाओंका चिंतवन करते हैं।।१।।

भावनाओंका फल और मोक्षसुखकी प्राप्तिका समय

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जबही जिय आतम जानै, तबही जिय शिवसुख ठानै।।२।।

अन्वयार्थ :—(जिमि) जिसप्रकार (पवनके) वायुके (लागै) लगनेसे (ज्वलन) अग्नि (जागै) भभक उठती है, [उसी-प्रकार इन बारह भावनाओंका] (चिंतत) चिंतवन करनेसे (सम सुख) समतारूपी सुख (जागै) प्रगट होता है। (जब ही) जब (जिय) जीव (आतम) आत्मस्वरूपको (जानै) जानता है (तब ही) तभी (जीव) जीव (शिवसुख) मोक्षसुखको (ठानै) प्राप्त करता है।

भावार्थ :—जिसप्रकार वायु लगनेसे अग्नि एकदम भभक उठती है; उसीप्रकार इन बारह भावनाओंका बारंबार चिंतवन करनेसे समता-शांतिरूपी सुख प्रगट हो जाता है—बढ़ जाता है। जब यह जीव आत्मस्वरूपको जानता है, तब पुरुषार्थ बढ़ाकर परपदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़कर परमानन्दमय स्वस्वरूपमें लीन होकर समतारसका पान करता है और अंतमें मोक्षसुख प्राप्त करता है।।२।।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

उन बारह भावनाओंका स्वरूप कहा जाता है–

१. अनित्य भावना

जोबन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥३॥

अन्वयार्थ :–(जोबन) यौवन, (गृह) मकान, (गो) गाय-भैंस, (धन) लक्ष्मी, (नारी) स्त्री, (हय) घोड़ा (गय) हाथी, (जन) कुटुम्ब (आज्ञाकारी) नौकर-चाकर तथा (इन्द्रिय-भोग) पाँच इन्द्रियोंके भोग–यह सब (सुरधनु) इन्द्रधनुष तथा (चपला) बिजलीकी (चपलाई) चंचलता-क्षणिकताकी भाँति (छिन थाई) क्षणमात्र रहनेवाले हैं।

भावार्थ :–यौवन, मकान, गाय-भैंस, धन-सम्पत्ति, स्त्री, घोड़ा-हाथी, कुटुम्बीजन, नौकर-चाकर तथा पाँच इन्द्रियोंके विषय–यह सर्व वस्तुएँ क्षणिक हैं–अनित्य हैं–नाशवान हैं। जिसप्रकार इन्द्रधनुष और बिजली देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं; उसीप्रकार ये यौवनादि कुछ ही कालमें नाशको प्राप्त होते हैं; वे कोई पदार्थ नित्य और स्थायी नहीं हैं; किन्तु निज शुद्धात्मा

ही नित्य और स्थायी है।

ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके, सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागताकी वृद्धि करता है, यह ''अनित्य भावना'' है। मिथ्यादृष्टि जीवको अनित्यादि एक भी भावना यथार्थ नहीं होती॥३॥

२. अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥४॥

अन्वयार्थ :—(सुर असुर खगाधिप) देवोंके इन्द्र, असुरोंके इन्द्र और खगेन्द्र [गरुड़, हंस] (जेते) जो-जो हैं (ते) उन सबका (मृग हरि ज्यों) जिसप्रकार हिरनको सिंह मार डालता है; उसीप्रकार (काल) मृत्यु (दले) नाश करता है। (मणि) चिन्तामणि आदि मणिरत्न, (मंत्र) बड़े-बड़े रक्षामंत्र; (तंत्र) तंत्र, (बहु होई) बहुतसे होने पर भी (मरते) मरनेवालेको (कोई) वे कोई (न बचावै) नहीं बचा सकते।

भावार्थ :—इस संसारमें जो-जो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, खगेन्द्र,

(पक्षियोंके राजा) आदि हैं, उन सबका–जिसप्रकार हिरनको सिंह मार डालता है; उसीप्रकार–काल अर्थात् मृत्यु नाश करता है। चिंतामणि आदि मणि, मंत्र और जंत्र-तंत्रादि कोई भी मृत्युसे नहीं बचा सकता।

यहाँ ऐसा समझना कि निज आत्मा ही शरण है; उसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है। कोई जीव अन्य जीवकी रक्षा कर सकनेमें समर्थ नहीं है; इसलिये परसे रक्षाकी आशा करना व्यर्थ है। सर्वत्र-सदैव एक निज आत्मा ही अपना शरण है। आत्मा निश्चयसे मरता ही नहीं; क्योंकि वह अनादि-अनन्त है–ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागताकी वृद्धि करता है, यह ''अशरण भावना'' है॥४॥

३. संसार भावना

चहुँगति दुःख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करै है।
सबविधि संसार असारा, यामें सुख नाहीं लगारा॥५॥

अन्वयार्थ :–(जीव) जीव (चहुँगति) चार गतिमें (दुःख) दुःख (भरै है) भोगता है और (परिवर्तन पंच) पाँच परावर्तन पाँच प्रकारसे परिभ्रमण (करै है) करता है। (संसार)

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

संसार (सबविधि) सर्व प्रकारसे (असारा) साररहित है, (यामें) इसमें (सुख) सुख (लगारा) लेशमात्र भी (नाहिं) नहीं है।

भावार्थ :—जीवकी अशुद्ध पर्याय वह संसार है। अज्ञानके कारण जीव चार गतिमें दुःख भोगता है और पाँच (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव) परावर्तन करता रहता है; किन्तु कभी शांति प्राप्त नहीं करता; इसलिए वास्तवमें संसारभाव सर्वप्रकारसे साररहित है, उसमें किंचित्मात्र सुख नहीं है; क्योंकि जिसप्रकार सुखकी कल्पना की जाती है, वैसा सुखका स्वरूप नहीं है और जिसमें सुख मानता है वह वास्तवमें सुख नहीं है; किन्तु वह परद्रव्यके आलम्बनरूप मलिन भाव होनेसे आकुलता उत्पन्न करनेवाला भाव है। निज आत्मा ही सुखमय है, उसके ध्रुवस्वभावमें संसार है ही नहीं —ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागतामें वृद्धि करता है, यह ''संसार भावना'' है॥५॥

४. एकत्व भावना

शुभ-अशुभ करमफल जेते, भोगै जिय एक हि तेते।
सुत-दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी॥६॥

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अन्वयार्थ :—(जेते) जितने (शुभ-करमफल) शुभकर्मके फल और (अशुभ-करमफल) अशुभकर्मके फल हैं (ते ते) वे सब (जिय) यह जीव (एक हि) अकेला ही (भोगै) भोगता है; (सुत) पुत्र (दारा) स्त्री (सीरी) साथ देनेवाले (न होय) नहीं होते। (सब) वे सब (स्वारथके) अपने स्वार्थके (भीरी) सगे (हैं) हैं।

भावार्थ :—जीवका सदा अपने स्वरूपसे अपना एकत्व और परसे विभक्तपना है; इसलिये वह स्वयं ही अपना हित अथवा अहित कर सकता है —परका कुछ नहीं कर सकता। इसलिये जीव जो भी शुभ या अशुभ भाव करता है, उनका फल (आकुलता) वह स्वयं अकेला ही भोगता है, उसमें अन्य कोई-स्त्री, पुत्र, मित्रादि सहायक नहीं हो सकते; क्योंकि वे सब पर पदार्थ हैं और वे सब पदार्थ जीवको ज्ञेयमात्र हैं; इसलिये वे वास्तवमें जीवके सगे-सम्बन्धी हैं ही नहीं; तथापि अज्ञानी जीव उन्हें अपना मानकर दुःखी होता है। परके द्वारा अपना भला-बुरा होना मानकर परके साथ कर्तृत्व-ममत्वका अधिकार मानता है; वह अपनी भूलसे ही अकेला दुःखी होता है।

संसारमें और मोक्षमें यह जीव अकेला ही है—ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि जीव निज शुद्ध आत्माके साथ ही सदैव अपना एकत्व मानकर अपनी निश्चयपरिणति द्वारा शुद्ध एकत्वकी वृद्धि करता है, यह ''एकत्व भावना'' है॥६॥

५. अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत-रामा॥७॥

अन्वयार्थ :—(जिय-तन) जीव और शरीर (जल-पय ज्यों) पानी और दूधकी भाँति (मेला) मिले हुए हैं (पै) तथापि (भेला) एकरूप (नहिं) नहीं हैं, (भिन्न-भिन्न) पृथक्-पृथक् हैं, (तो) तो फिर (प्रगट) जो बाह्यमें प्रगटरूपसे (जुदे) पृथक् दिखाई देते हैं ऐसे (धन) लक्ष्मी, (धामा) मकान, (सुत) पुत्र और (रामा) स्त्री आदि (मिलि) मिलकर (इक) एक (क्यों) कैसे (ह्वै) हो सकते हैं?

भावार्थ :—जिसप्रकार दूध और पानी एक आकाश-क्षेत्रमें मिले हुए हैं; परन्तु अपने-अपने गुण आदिकी अपेक्षासे दोनों बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं; उसीप्रकार यह जीव और शरीर भी मिले हुए-एकाकार दिखाई देते हैं तथापि वे दोनों अपने-अपने स्वरूपादिकी अपेक्षासे (स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे) बिलकुल पृथक्-पृथक् हैं, तो फिर प्रगटरूपसे भिन्न दिखाई देनेवाले ऐसे मोटरगाड़ी, धन, मकान, बाग, पुत्र-पुत्री, स्त्री आदि अपने साथ कैसे एकमेक हो सकते हैं? अर्थात् स्त्री-पुत्रादि कोई भी परवस्तु अपनी नहीं है—इसप्रकार सर्व पदार्थोंको अपनेसे भिन्न जानकर

स्वसन्मुखतापूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागताकी वृद्धि करता है, यह ''अन्यत्व भावना'' है ।।७।।

६. अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी।।८।।

अन्वयार्थ :—जो (पल) माँस (रुधिर) रक्त (राध) पीव और (मल) विष्टाकी (थैली) थैली है, (कीकस) हड्डी, (वसादितैं) चरबी आदिसे (मैली) अपवित्र है और जिसमें (घिनकारी) घृणा-ग्लानि उत्पन्न करनेवाले (नव द्वार) नौ दरवाजे (बहैं) बहते हैं, (अस) ऐसे (देह) शरीरमें (यारी) प्रेम-राग (किमि) कैसे (करै) किया जा सकता है?

भावार्थ :—यह शरीर तो माँस, रक्त पीव, विष्टा आदिकी थैली है और वह हड्डियाँ, चरबी आदिसे भरा होनेके कारण अपवित्र है तथा नौ द्वारोंसे मैल बाहर निकलता है, ऐसे शरीरके प्रति मोह-राग कैसे किया जा सकता है? यह शरीर ऊपरसे तो मक्खीके पंख समान पतली चमड़ीमें मढ़ा हुआ है; इसलिये बाहरसे सुन्दर

लगता है, किन्तु यदि उसकी भीतरी हालतका विचार किया जाये तो उसमें अपवित्र वस्तुएँ भरी हैं; इसलिये उसमें ममत्व, अहंकार या राग करना व्यर्थ है ।

यहाँ शरीरको मलिन बतलानेका आशय–भेदज्ञान द्वारा शरीरके स्वरूपका ज्ञान कराके, अविनाशी निज पवित्र पदमें रुचि कराना है; किन्तु शरीरके प्रति द्वेषभाव उत्पन्न करानेका आशय नहीं । शरीर तो उसके अपने स्वभावसे ही अशुचिमय है और यह भगवान आत्मा निजस्वभावसे ही शुद्ध एवं सदा शुचिमय पवित्र चैतन्य पदार्थ है; इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव अपने शुद्ध आत्माकी सन्मुखता द्वारा अपनी पर्यायमें शुचिताकी (पवित्रताकी) वृद्धि करता है, यह ''अशुचि भावना'' है ।।८।।

७. आस्रव भावना

जो योगनकी चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुद्धिवन्त तिन्हें निरवेरे।।९।।

अन्वयार्थ :–(भाई) हे भव्य जीव! (योगनकी) योगोंकी (जो) जो (चपलाई) चंचलता है, (तातैं) उससे (आस्रव) आस्रव (ह्वै) होता है और (आस्रव) वह आस्रव (घनेरे) अत्यन्त

(दुखकार) दुःखदायक है; इसलिये (बुधिवन्त) बुद्धिमान (तिन्हैं) उसे (निरवेरे) दूर करें।

भावार्थ :—विकारी शुभाशुभभावरूप जो अरूपी दशा जीवमें होती है, वह भाव-आस्रव है और उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणोंका स्वयं-स्वतः आना (आत्माके साथ एक क्षेत्रमें आगमन होना) सो द्रव्य-आस्रव है। [उसमें जीवकी अशुद्ध पर्यायें निमित्तमात्र हैं।]

पुण्य और पाप दोनों आस्रव और बन्धके भेद हैं।

पुण्य— दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत आदि शुभराग सरागी जीवको होते हैं, वे अरूपी अशुभभाव हैं और वह भावपुण्य है तथा उस समय नवीन कर्मयोग्य रजकणोंका स्वयं-स्वतः आना (आत्माके साथ एक क्षेत्रमें आगमन होना) सो द्रव्यपुण्य है। उसमें जीवकी अशुद्धपर्याय निमित्तमात्र है।

पाप—हिंसा, असत्य, चोरी इत्यादि जो अशुभभाव हैं वह भावपाप हैं, और उस समय कर्मयोग्य पुद्गलोंका आगमन होना सो द्रव्यपाप है। [उसमें जीवकी अशुद्ध पर्यायें निमित्त मात्र हैं।]

परमार्थसे (वास्तवमें) पुण्य-पाप (शुभाशुभ) आत्माको अहितकर हैं, तथा वह आत्माकी क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। द्रव्य पुण्य-पाप तो परवस्तु हैं, वे कहीं आत्माका हित-अहित नहीं कर सकते—ऐसा यथार्थ निर्णय प्रत्येक ज्ञानी जीवको होता है और इसप्रकार विचार करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्यके अवलम्बनके बलसे जितने अंशमें आस्रवभावको दूर करता है, उतने अंशमें उसे वीतरागताकी वृद्धि होती है—उसे ''आस्रव भावना'' कहते हैं॥९॥

८. संवर भावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम-अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥१०॥

अन्वयार्थ :—(जिन) जिन्होंने (पुण्य) शुभभाव और (पाप) अशुभभाव (नहिं कीना) नहीं किये तथा मात्र (आतम) आत्माके (अनुभव) अनुभवमें [शुद्ध उपयोगमें] (चित) ज्ञानको (दीना) लगाया है (तिनही) उन्होंने ही (आवत) आते हुए (विधि) कर्मोंको (रोके) रोका है और (संवर लहि) संवर प्राप्त करके (सुख) सुखका (अवलोके) साक्षात्कार किया है।

भावार्थ :—आस्रवका रोकना सो संवर है। सम्यग्दर्शनादि द्वारा मिथ्यात्वादि आस्रव रुकते हैं। शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग दोनों बन्धके कारण हैं—ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव पहलेसे ही जानता है। यद्यपि साधकको निचली भूमिकामें शुद्धताके साथ अल्प शुभाशुभभाव होते हैं; किन्तु वह दोनोंको बन्धका कारण मानता है; इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्यके आलम्बन द्वारा जितने अंशमें शुद्धता करता है, उतने अंशमें उसे संवर होता है और वह क्रमशः शुद्धतामें वृद्धि करते हुए पूर्ण शुद्धता अर्थात् संवर प्राप्त करता है। यह ''संवर भावना'' है॥१०॥

९. निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै॥११॥

अन्वयार्थ :—जो (निज काल) अपनी-अपनी स्थिति (पाय) पूर्ण होने पर (विधि) कर्म (झरना) खिर जाते हैं (तासों) उससे (निज काज) जीवका धर्मरूपी कार्य (न सरना) नहीं होता; किन्तु (जो) [निर्जरा] (तप करि) आत्माके शुद्ध प्रतपन द्वारा (कर्म) कर्मोंका (खिपावै) नाश करती है [वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा है।] (सोई) वह (शिवसुख) मोक्षका सुख (दरसावै) दिखलाती है।

भावार्थ :—अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मोंका खिर जाना तो प्रति समय अज्ञानीको भी होता है; वह कहीं शुद्धिका कारण नहीं होता। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा अर्थात् आत्माके शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं, वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है। तदनुसार शुद्धिकी वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है, तब जीव शिवसुख अर्थात् सुखकी

पूर्णतारूप मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसा जानता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्यके आलम्बन द्वारा जो शुद्धिकी वृद्धि करता है, यह ''निर्जरा भावना'' है॥११॥

१०. लोक भावना

किनहू न करौ न धरै को, षड्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमांहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता॥१२॥

अन्वयार्थ :—इस लोकको (किनहू) किसीने (न करौ) बनाया नहीं है, (को) किसीने (न धरै) टिका नहीं रखा है, (को) कोई (न हरै) नाश नहीं कर सकता; [और यह लोक] (षड्द्रव्यमयी) छह प्रकारके द्रव्यस्वरूप है—छह द्रव्योंसे परिपूर्ण है (सो) ऐसे (लोकमांहि) लोकमें (बिन समता) वीतरागी समता बिना (नित) सदैव (भ्रमता) भटकता हुआ (जीव) जीव (दुख सहै) दुःख सहन करता है।

भावार्थ :—ब्रह्मा आदि किसीने इस लोकको बनाया नहीं है; विष्णु या शेषनाग आदि किसीने इसे टिका नहीं रखा है तथा महादेव आदि किसीसे यह नष्ट नहीं होता; किन्तु यह छह द्रव्यमय

लोक स्वयंसे ही अनादि-अनन्त है; छहों द्रव्य नित्य स्व-स्वरूपसे स्थित रहकर निरन्तर अपनी नई-नई पर्यायों अर्थात् अवस्थाओंसे उत्पाद-व्ययरूप परिणमन करते रहते हैं। एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका अधिकार नहीं है। यह छह द्रव्यस्वरूप लोक वह मेरा स्वरूप नहीं है, वह मुझसे त्रिकाल भिन्न है, मैं उससे भिन्न हूँ; मेरा शाश्वत चैतन्य-लोक ही मेरा स्वरूप है –ऐसा धर्मी जीव विचार करता है और स्वोन्मुखता द्वारा विषमता मिटाकर, साम्यभाव-वीतरागता बढ़ानेका अभ्यास करता है, यह ''लोक भावना'' है॥१२॥

११. बोधिदुर्लभ भावना

अंतिमग्रीवकलौंकी हद, पायो अनन्त विरियां पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ; दुर्लभ निजमें मुनि साधौ॥१३॥

अन्वयार्थ :–(अंतिम) अंतिम-नववें (ग्रीवकलौंकी हद) ग्रैवेयक तकके (पद) पद (अनन्त विरियां) अनन्तबार (पायो) प्राप्त किये; तथापि (सम्यग्ज्ञान) सम्यग्ज्ञान (न लाधौ) प्राप्त न हुआ; (दुर्लभ) ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञानको (मुनि) मुनिराजोंने (निजमें) अपने आत्मामें (साधौ) धारण किया है।

શ્રી દિગંબર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

भावार्थ :–मिथ्यादृष्टि जीव मंद कषायके कारण अनेक-बार ग्रैवेयक तक उत्पन्न होकर अहमिन्द्रपदको प्राप्त हुआ है; परन्तु उसने एक बार भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहीं किया; क्योंकि सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना वह अपूर्व है; उसे तो स्वोन्मुखताके अनन्त पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और ऐसा होने पर विपरीत अभिप्राय आदि दोषोंका अभाव होता है ।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्माके आश्रयसे ही होते हैं । पुण्यसे, शुभरागसे, जड़ कर्मादिसे नहीं होते । इस जीवने बाह्य संयोग, चारों गतिके लौकिक पद अनन्तबार प्राप्त किये हैं; किन्तु निज आत्माका यथार्थ स्वरूप स्वानुभव द्वारा प्रत्यक्ष करके उसे कभी नहीं समझा, इसलिये उसकी प्राप्ति अपूर्व है ।

बोधि अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकता; उस बोधिकी प्राप्ति प्रत्येक जीवको करना चाहिये । सम्यग्दृष्टि जीव स्वसन्मुखतापूर्वक ऐसा चिंतवन करता है और अपनी बोधि और शुद्धिकी वृद्धिका बारम्बार अभ्यास करता है, यह ''बोधिदुर्लभ भावना'' है ।।१३।।

१२. धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग-ज्ञान-व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे।।१४।।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अन्वयार्थ :—(मोह तैं) मोहसे (न्यारे) भिन्न, (सारे) साररूप अथवा निश्चय (जो) जो (दृग-ज्ञान-व्रतादिक) दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय आदिक (भाव) भाव हैं, (सो) वह (धर्म) धर्म कहलाता है। (जबै) जब (जिय) जीव (धारै) उसे धारण करता है (तब ही) तभी वह (अचल सुख) अचल सुख-मोक्ष (निहारै) देखता है—प्राप्त करता है।

भावार्थ :—मोह अर्थात् मिथ्यादर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धान; उससे रहित निश्चयसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (रत्नत्रय) ही साररूप धर्म है। व्यवहार रत्नत्रय वह धर्म नहीं है—ऐसा बतलानेके लिये यहाँ गाथामें ''सारे'' शब्दका प्रयोग किया है। जब जीव निश्चय रत्नत्रयस्वरूप धर्मको स्वाश्रय द्वारा प्रगट करता है, तभी वह स्थिर, अक्षयसुख (मोक्ष) प्राप्त करता है। इसप्रकार चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि जीव स्वोन्मुखता द्वारा शुचिकी वृद्धि बारम्बार करता है। यह ''धर्म भावना'' है॥१४॥।

आत्मानुभवपूर्वक भावलिंगी मुनिका स्वरूप

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥१५॥

अन्वयार्थ :—(सो) ऐसा रत्नत्रय (धर्म) धर्म (मुनिनकरि) मुनियों द्वारा (धरिये) धारण किया जाता है, (तिनकी) उन मुनियोंकी (करतूति) क्रियाएँ (उचरिये) कही जाती हैं, (भवि प्रानी) हे भव्य जीवों! (ताको) उसे (सुनिये) सुनो और (अपनी) अपने आत्माके (अनुभूति) अनुभवको (पिछानी) पहिचानो।

भावार्थ :—निश्चयरत्नत्रयस्वरूप धर्मको भावलिंगी दिगम्बर जैन मुनि ही अंगीकार करते हैं—अन्य कोई नहीं। अब, आगे उन मुनियोंके सकलचारित्रका वर्णन किया जाता है। हे भव्यों! उन मुनिवरोंका चारित्र सुनो और अपने आत्माका अनुभव करो॥१५॥

पाँचवीं ढालका सारांश

यह बारह भावनाएँ चारित्रगुणकी आंशिक शुद्ध पर्यायें हैं; इसलिये वे सम्यग्दृष्टि जीवको ही हो सकती हैं। सम्यक् प्रकारसे यह बारह प्रकारकी भावनाएँ भानेसे वीतरागताकी वृद्धि होती है। इन बारह भावनाओंका चिंतवन मुख्यरूपसे तो वीतरागी दिगम्बर जैन मुनिराजको ही होता है तथा गौणरूपसे सम्यग्दृष्टिको भी होता है। जिसप्रकार पवनके लगनेसे अग्नि भभक उठती है; उसीप्रकार अन्तरंग परिणामोंकी शुद्धता सहित इन भावनाओंका चिंतवन करनेसे समताभाव प्रगट होता है और उससे मोक्षसुख प्रगट होता है। स्वोन्मुखतापूर्वक इन भावनाओंसे संसार, शरीर और भोगोंके प्रति विशेष उपेक्षा होती है और आत्माके परिणामोंकी निर्मलता बढ़ती है।

इन बारह भावनाओंका स्वरूप विस्तारसे जानना हो तो ''स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा,'' ''ज्ञानार्णव'' आदि ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

अनित्यादि चिंतवन द्वारा शरीरादिको बुरा जानकर, अहितकारी मानकर उनसे उदास होनेका नाम अनुप्रेक्षा नहीं है; क्योंकि यह तो जिसप्रकार पहले किसीको मित्र मानता था, तब उसके प्रति राग था और फिर उसके अवगुण देखकर उसके प्रति उदासीन हो गया। उसीप्रकार पहले शरीरादिसे राग था, किन्तु

बादमें उनके अनित्यादि अवगुण देखकर उदासीन हो गया; परन्तु ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। किन्तु अपने तथा शरीरादिके यथावत् स्वरूपको जानकर, भ्रमका निवारण करके, उन्हें भला जानकर राग न करना तथा बुरा जानकर द्वेष न करना—ऐसी यथार्थ उदासीनताके हेतु अनित्यता आदिका यथार्थ चिंतवन करना ही सच्ची अनुप्रेक्षा है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृ. २२९, श्री टोडरमल स्मारक ग्रन्थमालासे प्रकाशित)।

पाँचवीं ढालका भेद-संग्रह

अनुप्रेक्षा अथवा भावना :– अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म–ये बारह हैं।

इन्द्रियोंके विषय :– स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द –ये पाँच हैं।

निर्जरा :–के चार भेद हैं–अकाम, सविपाक, सकाम, अविपाक।

योग :–द्रव्य और भाव।

परिवर्तन :–पाँच प्रकार हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव।

मलद्वार :–दो कान, दो आँखें, दो नासिका छिद्र, एक मुँह तथा मल-मूत्रद्वार दो–इसप्रकार नौ।

वैराग्य :–संसार, शरीर और भोग– इन तीनोंसे उदासीनता।

कुधातु :–पीव, लहू, वीर्य, मल, चरबी, माँस और हड्डी आदि।

पाँचवीं ढालका लक्षण-संग्रह

अनुप्रेक्षा (भावना) :—भेदज्ञानपूर्वक संसार, शरीर और भोगादिके स्वरूपका बारम्बार विचार करके उनके प्रति उदासीनभाव उत्पन्न करना।

अशुभ उपयोग :—हिंसादिमें अथवा कषाय, पाप और व्यसनादि निन्दापात्र कार्योंमें प्रवृत्ति।

असुरकुमार :—असुर नामक देवगति-नामकर्मके उदयवाले भवनवासी देव।

कर्म :—आत्मा रागादि विकाररूपसे परिणमित हो तो उसमें निमित्तरूप होनेवाले जड़कर्म-द्रव्यकर्म।

गति :—नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्यरूप जीवकी अवस्थाविशेषको गति कहते हैं, उसमें गति नामक नामकर्म निमित्त है।

ग्रैवेयक :—सोलहवें स्वर्गसे ऊपर और प्रथम अनुदिशसे नीचे, देवोंको रहनेके स्थान।

देव :—देवगतिको प्राप्त जीवोंको देव कहते हैं; वे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व —इन आठ सिद्धि (ऐश्वर्य) वाले होते हैं; उनके मनुष्य समान आकारवाला सप्त कुधातु रहित सुन्दर शरीर होता है।

धर्म :—दुःखसे मुक्ति दिलानेवाला निश्चयरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग; जिससे आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है। (रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।)

धर्मके भिन्न-भिन्न लक्षण :—१. वस्तुका स्वभाव वह धर्म; २. अहिंसा; ३. उत्तमक्षमादि दस लक्षण; ४. निश्चयरत्नत्रय।

पाप :—मिथ्यादर्शन, आत्माकी विपरीत समझ, हिंसादि अशुभभाव सो पाप है।

पुण्य :—दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रतादिके शुभभाव, मंदकषाय वह जीवके चारित्रगुणकी अशुद्ध दशा है। पुण्य-पाप दोनों आस्रव हैं, बन्धनके कारण हैं।

बोधि :—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकता।

मुनि (साधु परमेष्ठी) :—समस्त व्यापारसे विमुक्त, चार प्रकारकी आराधनामें सदा लीन, निर्ग्रंथ और निर्मोह ऐसे सर्व साधु होते हैं। समस्त भावलिंगी मुनियोंको नग्न दिगम्बरदशा तथा साधुके २८ मूलगुण होते हैं।

योग :—मन, वचन, कायाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका कम्पन होना उसे द्रव्ययोग कहते हैं। कर्म और नोकर्मके ग्रहणमें निमित्तरूप जीवकी शक्तिको भावयोग कहते हैं।

शुभ उपयोग :—देवपूजा, स्वाध्याय, दया, दानादि, अणुव्रत-महाव्रतादि शुभभावरूप आचरण।

सकलव्रत :— ५- महाव्रत, ५- समिति, ६- आवश्यक, ५- इन्द्रियजय, ६- केशलोंच, अस्नान, भूमिशयन, अदन्तधोवन, खड़े-खड़े आहार, दिनमें एक बार आहार-जल तथा नग्नता आदिका पालन—सो व्यवहारसे सकलव्रत है और रत्नत्रयकी एकतारूप आत्मस्वभावमें स्थिर होना सो निश्चयसे सकलव्रत है।

सकलव्रती :–(सकलव्रतोंके धारक) रत्नत्रयकी एकतारूप स्वभावमें स्थिर रहनेवाले महाव्रतके धारक दिगम्बर मुनि वे निश्चय सकलव्रती हैं ।

अन्तर-प्रदर्शन

१. अनुप्रेक्षा और भावना पर्यायवाची शब्द हैं; उनमें कोई अन्तर नहीं है ।

२. धर्मभावनामें तो बारम्बार विचारकी मुख्यता है और धर्ममें निज गुणोंमें स्थिर होनेकी प्रधानता है ।

३. व्यवहार सकलव्रतमें तो पापोंका सर्वदेश त्याग किया जाता है और व्यवहार अणुव्रतमें उनका एकदेश त्याग किया जाता है; इतना इन दोनोंमें अन्तर है ।

पाँचवीं ढालकी प्रश्नावली

१. अनित्यभावना, अन्यत्वभावना, अविपाकनिर्जरा, अकामनिर्जरा, अशरणभावना, अशुचिभावना, आस्रवभावना, एकत्वभावना, धर्मभावना, निश्चयधर्म, बोधिदुर्लभभावना, लोकभावना, संवरभावना, सकामनिर्जरा, सविपाकनिर्जरा आदिके लक्षण समझाओ ।

२. सकलव्रतमें और विकलव्रतमें, अनुप्रेक्षामें और भावनामें, धर्ममें और धर्मद्रव्यमें, धर्ममें और धर्मभावनामें तथा एकत्वभावना और अन्यत्वभावनामें अन्तर बतलाओ ।

३. अनुप्रेक्षा, अनित्यता, अन्यत्व और अशरणपनेका स्वरूप दृष्टान्त सहित समझाओ ।

४. अकाम निर्जराका निष्प्रयोजनपना, अचल सुखकी प्राप्ति, कर्मके आस्रवका निरोध, पुण्यके त्यागका उपदेश और सांसारिक सुखोंकी असारता आदिके कारण बतलाओ ।

५. अमुक भावनाका विचार और लाभ, आत्मज्ञानकी प्राप्तिका समय और लाभ, इन्द्रधनुष, औषधि सेवनकी सार्थकता-निरर्थकता, बारह भावनाओंके चिंतवनसे लाभ, मंत्रादिकी सार्थकता और निरर्थकता । वैराग्यकी वृद्धिका उपाय, इन्द्रधनुष्य तथा बिजलीका दृष्टान्त क्या समझाते हैं? लोकका कर्ता-हर्ता माननेसे हानि, समता न रखनेसे हानि, सांसारिक सुखका परिणाम और मोक्ष-सुखकी प्राप्तिका समय-आदिका स्पष्ट वर्णन करो ।

६. अमुक शब्द, चरण तथा छन्दका अर्थ-भावार्थ समझाओ । लोकका नकशा बनाओ और पाँचवीं ढालका सारांश कहो ।